कविताएं

कल्पना ही मेरा जीवन

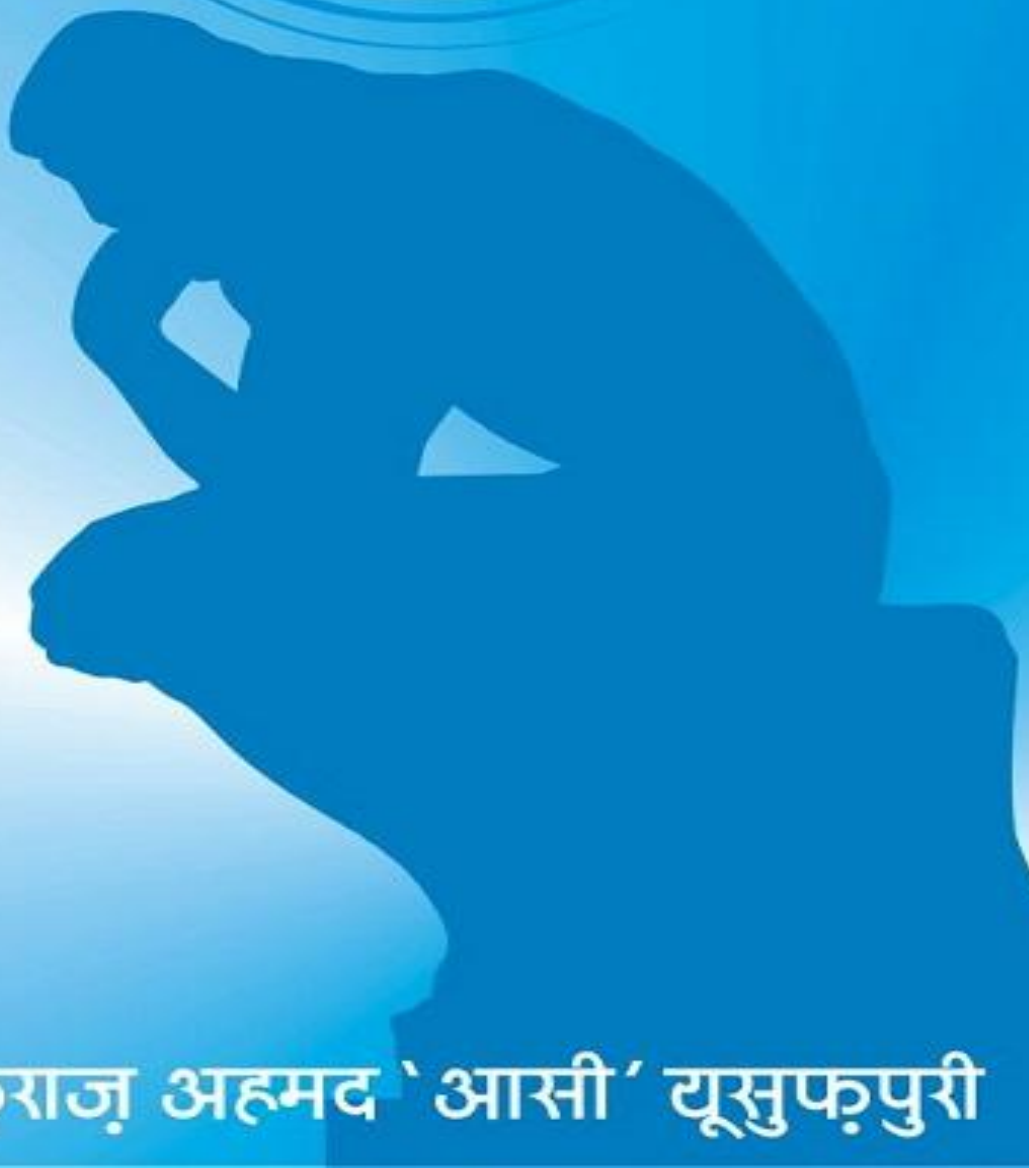

सरफ़राज़ अहमद `आसी´ यूसुफ़पुरी

सम्पादकीय

कवि की भावनाओं का प्रतिबिम्ब या कहा जाये कि विचारों की अभिव्यक्ति ही ‘ काव्य ‘ है ।
कोई कल्पना भाव या विचार मष्तिक के किसी कोने से कागज पर उतरता है तो वास्तव में वह अपने आसपास के जीवन , प्रेम –विरह , प्रकृति सुन्दरता , दिली भावनाओं , को ही चित्रित करता है ।

मित्रों हम सभी के लिए ये एक हर्ष की बात है कि हमारी website साहित्यकारों रचनाकारों के विकास और सम्मान के लिए प्रतिबद्ध है । इसी दिशा में सभी नए और पुराने रचनाकारों की रचनाएँ प्रतिदिन website पर प्रकाशित कर उनकी भावनाओं को साहित्य प्रेमी पाठकों तक पहुचाया जाता है।

साहित्य साधना की दिशा में एक और कदम बढ़ाते हुए www.kavyasagar.com साहित्यकारों के संग्रह प्रकाशन को न्यूनतम लगत मात्र में E book का प्रकाशन अपनी वेबसाइट पर करने का निर्णय लिया है ।
इसी क्रम में website पर कहानी संग्रह , काव्य संग्रह , ग़ज़ल संग्रह प्रकाशित किया जाना प्रस्तावित है।
रचानाकरारों और पाठकों का सहयोग सादर अपेक्षित है ।

प्रबन्ध समिति ,

www.kavyasagar.com

समीक्षा : काव्य – संग्रह ' कल्पना ही मेरा जीवन
लेखक - सरफ़राज़ अहमद (आसी युसुफपुरी)
द्वारा – प्रताप सिंह नेगी
प्रकाशन - E BOOK (www.kavyasagar.com)

कवि सरफ़राज़ अहमद (आसी यूसुफपुरी) के काव्य – संग्रह ' कल्पना ही मेरा जीवन ' आपके समक्ष प्रस्तुत है कवि ने काव्य संग्रह के माध्यम से साहित्य जगत में अपनी अकल्पनीय सुनहरी कल्पनाओं के साथ पदार्पण किया है ।
जिसका हम तहे दिल से स्वागत करते हैं ।हमे पूर्ण विश्वास है कि आसी यूसुफपुरी के इस काव्य संग्रह में आप को विविध रंगी कविताओं का समायोजन अवश्य देखने को मिलेगा ।

सरफ़राज़ अहमद आसी की हर कविता में जीवन की खूबसूरत परिभाषायें हमें पढ़ने को मिलती हैं । सरल शब्दों में बेचैन मन की कल्पनाएँ जो तुलिका से कागज पर और कागज के पृष्ठ से उतर कर सीधे पाठक के दिल को गहरे तक स्पर्श कर जाती हैं ।

आसी जी के काव्य संग्रह में जहां एक ओर हिमालय , वृक्ष की पीड़ा, मन्दिर , आरती का दीप , इत्यादि जैसे प्राकृतिक एवम आध्यात्मिक बिम्बों को समक्ष रख कर कविता कही गयी है वहीँ गोदोष,निर्धन की लाज , लोलिता इत्यादि सामाजिक कुरीतियों , विषमताओं और समाज में फैले भ्रटाचार के प्रति तीष्ण प्रहार भी आपकी कविताओं में जा-ब-जा देखने को मिलता है ।

आपने अपनी सरल और छोटी-छोटी कविताओं में इतना सुन्दर काव्य संयोजन किया है कि कविता गहरे तक दिल में उतर जाती हैं । यूं कहा जा सकता है कि सरफ़राज़ अहमद आसी जी की कविताओं का कोई सानी नहीं है अपनी मिसाल आप हैं ।

श्री सरफ़राज़ अहमद आसी ने इस काव्य संग्रह "कल्पना ही मेरा जीवन" में केवल अपनी छन्द –मुक्त कविताये ही प्रस्तुत की हैं जो पाठक के भीतर तक एक लय तरंगित करती हैं ।
आपकी कविताओं में नारी जीवन से सम्बंधित सामाजिक विडमनाओं और कुरीतियों के प्रति भी तीखे तेवर स्पष्ट दृष्टिगोचर होते हैं समाज,साहित्य और अध्यात्म, जीवन के हर रिश्ते को आपने अपनी कविताओं में बहुत ख़ूबसूरती से ढाला है ।

संवेदना कविता की आत्मा होती है जो युवा कवि एवम् शायर श्री आसी यूसुफपुरी जी की हर कविता में आपको भरपूर दिखाई देगी । सरफ़राज़ अहमद आसी को हिंदी साहित्य में बहुआयामी प्रतिभा की प्रतिमूर्ति कहें तो कोई अतिश्योक्ति नहीं होगी ।

आपने कविता ,गीत,ग़ज़ल नज़्म, दोहा, मुक्तक, रुबाई, हम्द, नात, मनकबत, मर्सिया, नौहा,सेहरा आदि हिंदी एवम् उर्दू साहित्य के अतिरिक्त अपनी लोकभाषा भोजपुरी में भी निर्गुण,कजरी एवम् ग़ज़ल लिखकर भारतीय समाज को अपना अमूल्य योगदान दिया है,

लेखन के साथ साथ संपादन में भी आप की विशेष रूचि है "परिंदे पूरब के" "आदाबे सुखन" तथा त्रैमासिक "खयाले शगुफ्ता" के साथ आपने दो उपन्यास "जादूगर" एवम् "मालिक बनाम नौकर" लिख कर अपनी लेखन प्रतिभा की एक अनूठी मिशाल प्रस्तुत की है

मैं परम पिता परमेश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि सरफ़राज़ अहमद आसी जी की इस वटवृक्ष रूपी छाया में भारतीय साहित्य सदा फूलता फलता रहे ।

प्रताप सिंह नेगी

कवि परिचय

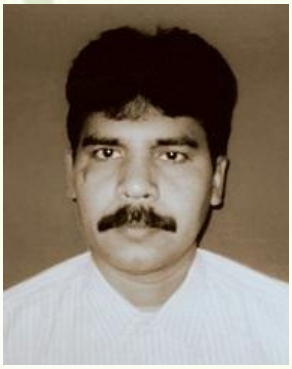

नाम-	सरफ़राज़ अहमद
उपनाम	आसी यूसुफपुरी
पिता-	स्व. अबुल कलाम
माता-	नसीबन निसा
पौत्र-	अब्दुस्सलाम जाहिल युसुफपुरी
शिक्षा-	बी. ए. मोअल्लिम ए उर्दू (अलीगढ बोर्ड) यू.टी.सी. फ़ाज़िल अरबी (लखनऊ बोर्ड)
मुख्य सचिव-	आसी अकादमी यूसुफपुर(रजि.)
सचिव-	खामोश अकादमी यूसुफपुर
सम्पादक-	खयाले शगुफ़्ता (त्रैमासिक)
उप सम्पादक	कृष्ण साक्षी (त्रैमासिक)
सम्मान-	शाने अदब (आल इण्डिया बज़्मे सईद झाबुआ) अदब नवाज़(खामोश अकादमी युसुफपुर) अकबर इलाहाबादी सम्मान (गुफ्तगू इलाहबाद) अज़ीज़ ग़ाज़ीपुरी सम्मान(महबूब अकादमी युसुफपुर) साहित्याराधन सम्मान(भारतीय परिषद प्रयाग) सारस्वत सम्मान(हिंदी साहित्य सम्मेलन प्रयाग)

भारती सम्मान(मित्रकूल प्रयाग)
काव्य कुमुद(संत साधना समिति बलिया)
श्री हरि ठाकुर स्मृति सम्मान(पुष्पगंधा प्रकाशन छत्तीस गढ़)
मुक्तिबोध पारितोषिक प्रशस्ति पत्र (परसा ग़ाज़ीपुर)

कृतियाँ

1 मैं कवि हूँ
2 करबो बलो
3 मर्क ए ग़म
4 परिंदे पूरब के
5 आदाबे सुखन
6 क़तरा क़तरा दरिया
इत्यादि

संपर्क

युसूफपुर
पोस्ट मुहम्मदाबाद
ज़िला ग़ाज़ीपुर (उत्तर प्रदेश) - 233227 भारत

मोब. 07668756588

हिमालय

कौन हूँ मैं कौन हूँ ?
पाषाणी तन का मैं
प्रिय जन जन का मैं
धरती से गौरवान्वित अम्बर से लज्जित हूँ
अन गिनत रत्नों के
ढेर से सुसज्जित हूँ
इष्ठुर या निष्ठुर हूँ
कायर हूँ
अकायर हूँ
वर्षों से
सदियों से
मैं सहस्त्राब्दियों से
नित्य सहा करता हूँ
एड़ी से चोटी तक
मानव और मौसम के
कोप प्रकोप और-
ठंडक को
गर्मी को
बरखा को
बिजली को
अचालित- स्वचालित
ऐटमी प्रहार को
टूटता-बिखरता बस
देखता मैं रहता हूँ

अपने ही ढहते
भहराते अस्तित्व को
मूढ़-अमूढ़ मैं
सचल या अचल हूँ
शटल या अटल हूँ
विकसित हूँ ?
विनाशित हूँ ?
धरती की छाती पर
मौन सी एक मूरत मैं
कब की स्थापित हूँ
भीतर है कोलाहल
बाहर से मौन हूँ
कौन हूँ मैं कौन हूँ?????

सम्बन्ध

पश्चताप कर
अपना लिया था
पुनःमेरे बाप ने
मेरी माँ के साथ मुझे भी
और ढो रहा है आजतक
मुझसे अपनी सन्तान के सम्बन्ध का बोझ-

वह नहीं जनता
मैं कौन हूँ ?
मैं क्या हूँ ?
कब आया था मैं ?
उसकी असहाय पत्नी की कोख में-

भूल गया है शायद -
अपनी पत्नी की
वह तलाक़ के बाद
गुज़री भयानक
हलाला की रात

वह जब निर्वाह कर रही थी
मेरे किसी और
सगे बाप के साथ
धर्म के नाम पर
समाज का दिया गया
तलाक़ के बदले
तलाक़ का अभिशाप

मैं आया था
तभी अपनी माँ की
पवित्र कोख में
और माप रहा हूँ
जन्म से अब तक
अपने दोनों पिताओं के मध्य
जायज़ और नाजायज़
सम्बंधों की दूरी

वृक्षों की पीड़ा

जगन्नाथ,बलभद्र,सुभद्रा
के रथ दर्शन
भाग्यवश
मैंने किया
आज 'पुरी' में जाकर।

हर्षोत्साहित जनता
जब वह खींच रही थी
जाने कितने ही वृक्षों के
तन से निर्मित
भव्य,विशाल,विश्वविख्यात देवों के उस
अनुपम रथ को

रंग-बिरंगे
पहियों की
चुर-चुर ध्वनि से
पीड़ामय कुछ करुण कराहें
वातावरण में गूंज रही थीं-

पूछ रहीं थीं
सिसक-सिसक कर
वृक्षों की वह ज़िंदा लाशें-
ऐ मेरे भगवान तुम्हारे
इस निर्मम
वैभव की ख़ातिर
हम
कब तक क़ुर्बानी देंगें ???

अंतिम पृष्ठ

ख़त्म किया है
कई बार मैंने
फाड़ कर
घर की दीवार पर टंगे
पंचांग का
एक-एक पृष्ठ

आज पुनः
फाड़ रहा हूँ
घर की दीवार पर टंगे
पंचांग का
अंतिम पृष्ठ

क्यों कि-
कल से करना है पुनः
अनवरत
नित्य नए पृष्ठों के
फाड़ने का
क्रम शुरू.....

परिवर्तन

यह प्रथाएं हमारी पोषित हैं
हमने जना(जन्मा) है इन्हें
समय-समय पर
निज स्वार्थ हेतु
धार्मिक/अधार्मिक
समाजिक/असमाजिक
मकड़जाल में गूंथ कर।

कितनी क्रूर
और विभत्स थी
हमारी वह 'सतीप्रथा'
जो नहीं रही अब
लील गया जिसे
समय परिवर्तन और
मानव की मनुष्यता भरी
मानसिक सोच ने
तोड़ दिया है जिसकी
समस्त लौह बेड़ियां
जागरूकता की
सामाजिक चेतना ने ।

ऐसे ही जाने कितने ही
पोषितों का गला घोंटा है
हमने तथा हमारी जागरूकता ने
जिसका हमें
कदापि दुःख नहीं होगा
क्यों कि-
हम जान चुके हैं अब
समय के साथ चलना।

गिद्ध और लाशें

कल सांय एक गिद्ध
मेरी छत के बुर्ज पर बैठा
ख़ून का आंसू बहा रहा था

थका-हारा
अभी -अभी उतरा था वह
सुदूर आकाशीय सफ़र से
शायद -
'भुज' से आया होगा?

यही सोच कर मैं
उसकी रक्तरंजित
आँखों में झाँका और
देखा
हर्ष की जगह
भयानक उदासियाँ

उड़ीसा और लातूर के साथ
गुजरात में पसरा
मौत का सन्नाटापन
ढही-बिखरी
बहुमंज़िली इमारतें
और उन इमारतों के बीच
सिसकियाँ भरती हुईं
ज़िंदा लाशों की ढेरें

और उन ढेरों पर
टूटते-झपटते हुए
वर्दीधारी /खद्दरधारी
ढेर सारे कुत्ते
और भेड़ियों का झुण्ड।

शून्य

कुछ वर्षों का ही
इतिहास है हमारे पास
जब कि
यह धरती हज़ारों हज़ार वर्ष पुरानी है
और यह अम्बर
अनगिनत गिनतियों के आंकड़े से पार का।

हमें ज्ञात नहीं कि-
कभी सप्ताह भर के दिन थे
हफ़्ते बराबर रातें
महीनें भर के सप्ताह
और वर्ष बराबर महीने
सदियों का वर्ष
और सहस्त्राब्दियों का
जीवन
तब हम जीते थे
एक लम्बी आयु
जो अब नहीं है ।।

हमें ज्ञात नहीं कि-
कभी सूरज अपनी चमक से
सौ गुना चमकदार था,और
चाँद स्वयं चमकता था
तारे बड़े और बहुत बड़े थे
और बहुत बड़ा था
हमारा यह ब्रह्माण्ड ।

चाँद, सूरज, तारे, पृथ्वी
ग्रह-उपग्रह
समस्त पिघलते जा रहे हैं
धीरे-धीरे
ग्लेशियर की तरह
अपने ही तेज
या तिमिर की अग्नि में
और गलते ही जायेंगे
क्यों कि-
धीरे-धीरे एक दिन
गलकर सब को
'शून्य' होना है।।

भय का भूत

नींद खुली जब रात को
मैंने छत पर देखा
दूर खुली खिड़की से
कोई काली छाया
घूर-घूर कर शायद-
मुझको देख रही थी।

अंगारों सी दहक रही थीं
आँखें उसकी
और फड़कते
पंखों की कर्कश ध्वनि से
मेरे कमरे का सन्नाटा
टूट रहा था।

मैंने सोचा
शायद कोई उल्लूक होगा!
होगा कोई उल्लूक शायद
वृक्ष के पीछे?

ध्यान से देखा मैंने तो
एक छत के नीचे
खोया-खोया जर्जर बूढ़ा
चाँद बेचारा
अस्त समय की
अपनी कुछ अंतिम साँसें
कुछ तारों की झुरमुट में
जाते-जाते
गिन रहा था।

मैं चादर की ओट में सहमा
जाने-अन्जाने ही क्या-क्या
लेटे लेटे सोच रहा था।
सोच रहा था
तभी किसी की
चीख़ नें
मेरे ध्यान को खींचा
मेरी छत के पीछे वाली कोठी से ही
"मुँह नोचवा-मुँह नोचवा"
कोई चीख़ रहा था।।

गो-दोष

एक निर्धन चरवाह की बेटी
सुन्दर अति सुशील कुंवारी
यह कैसा अभिशाप झेलती
गो-हत्या का पाप झेलती

एक हाथ वह
कुछ सिक्कों की
थैली थामें
दूजे हाथ वह
गो-माता का पगहा लेकर
गाँव के सूने गलियारों में
घूम-घूम कर मांग रही थी
खुद पर लगे
गो-दोष का दान।

दान वह अपनी भूख के
तृप्ति के लिए नहीं
बल्कि -
समाज के बड़े प्रतिष्ठित
धार्मिक और सम्मानित
भुखड़ों के लिए-

जिनके रचे
धार्मिक मकड़जाल में
जकड़ी
एक निर्धन चरवाह की बेटी
घूम रही थी
चिलचिलाती कड़ी धूप में
नंगे पांव वह गली-गली
गूँग,बधिर और सूर बनी
देख रही बोझिल आँखों से
बाएं, दाएं, आगे, पीछे
मानवी कुत्तों की लम्बी
लप-लप करती
जिह्वाएं

सकुचाती,सहमी,घबराई
धर्म-समाज की ज़ंजीरों में
जकड़ी एक चरवाह की बेटी
लाँघ रही थी
क़दम-क़दम पर
गहरी चौड़ी पाप की खाई ।

संघर्ष

जा री हट्ठी गौरइया
कि तुझसे अब मैं हार चुका
खोल दिया है , द्वार देख ले
उस पिंजरे का
जिसमे तू और तेरे साथी
ब्रितानी शासन के जैसे
दण्ड उदण्ड को झेल रहे थे

जा री हट्ठी गौरइया
कि नित दिन पिंजरे की दीवारों -
पर तेरा प्रहार चोंच का
देख देख कर हार चुका अब
मेरे भीतर का रावणपन

जा री हट्ठी गौरइया
कि तेरा यह प्रयास निरंतर
देखके मैं भयभीत हूँ
क्यों कि-
तेरी इस मासूम छवि में
एक बड़ा संघर्ष छुपा है....

शब्द

मन की व्याकुलता
तन की अभिलाषा तथा
आत्मिक अभिरुचियों को
अभिव्यक्त करने का
माध्यम होता है
"शब्द"

"शब्द" बोलता है
चिट्ठियों में ,पत्रियों में
समाचार पत्र और विज्ञापनों में अंकित
अक्षर के माध्यम से ।

"शब्द" खींचता है चित्र
संकेतात्मक
जब व्यक्ति गूंगा हो ।

"शब्द" भाषा की गहराई का मापक होता है।
"शब्द" मानवी संबंधो का आधार-सूत्र तथा
"शब्द" चित्रकार होता है
गढ़ता है नित्य नई मूरत
मानवी संवेदनाओं की
आत्मा की
परमात्मा की
समाज की
सच्चाई की
अच्छाई और बुराई की।

"शब्द" निर्जीव और निरर्थक होता है
जब सामने वाला व्यक्ति
सूर बधिर और गूंग हो

सहानुभूति के दो शब्द

हर लेते हैं
मन की सारी पीड़ाएँ
जब भी कोई बोलता है
सहानुभूति के दो शब्द।।

क्षण मात्र में ही
हृदय भाव विहवल हो उठता है
जाने कितनी ही व्यथाएं
उमड़-घुमड़ पड़ती हैं
और हो जाते हैं
नयन हमारे अश्रुपूरित
जब भी कोई बोलता है
सहानुभूति के दो शब्द।।

अनगिनत वेदनाओं के
प्रज्जवलित हो उठते हैं
क़तार बध्द हृदय में दीप
मन के जाने-अन्जाने
कितने ही दुःख हर लेते हैं
जब भी कोई बोलता है
सहानुभूति के दो शब्द।।

शब्द यह निर्जीव पर-
कितने ही रुग्ण तनों की आत्माओं में
जीने का प्राण फूंकते हैं
अधखिला कुंजन को
कर देते कुटज
और उसमें भर देते हैं
सुंदरता के मोहक रंग
जब भी कोई बोलता है
सहानुभूति के दो शब्द।।

अभिलाषा

मैं एक ठूँठ
जैसे वृक्ष कोई
"ताड़" का
दूर बस्ती से अकेला हूँ खड़ा
मन में सौ सपने संजोये
जूझता बरसों से ही
आते-जाते अंधड़ों से
और सहता
चिलचिलाती धूप की बरसात को ।।

मैं एक ठूंठ
जैसे वृक्ष कोई
''ताड़" का
दूर स्वयं से दूर
बस्ती में खड़ा एक नीम को
ताकता-
निहारता-
मैं सोचता हूँ
उसपे आते और जाते
चहचहाते
पँछियों को देख कर -
काश कि!
मैं भी होता
वृक्ष कोई
"नीम'' का.....।।

यथार्थ की बलि

यथार्त के नाम पर
चला है जब भी क़लम
और पड़ी है नीव
किसी उपन्यास की

जाने अन्जाने ही
हुई है बदनाम
समाज में
कोई न कोई "लोलिता"

वास्तविक रूप

चन्द्रमा की
उपमाओं से सुसज्जित
मेरी सारी कवितायेँ
हंस रही हैं मुझ पर
क्यों कि-

आज फिर दिख रहा है
आकाश की गोद में
उंघता हुआ
खपरैल पर बैठे
कोई उल्लूक के नेत्र सा
भयावह
चाँद का वास्तविक रूप।।

मैं

मैं कवि हूँ
कल्पना ही मेरा जीवन
सोचता हूँ
आज हूँ एक
जीर्ण-शीर्ण पीत काग़ज़
ढेर में रद्दी के
गल रहा दिन रात मैं
झेलता बूढ़े बदन पर
धूप की बरसात मैं

मैं कवि हूँ
कल्पना ही मेरा जीवन
सोचता हूँ
कल तलक था
एक प्रेयसी के लिए
एक प्रेमी की रचित
पातियों का रूप मैं
प्रेम की पहली दहकती अग्नि का स्वरूप मैं

मन्दिर

मैं कवि हूँ
कल्पना ही मेरा जीवन
सोचता हूँ

मैं हूँ एक बूढ़ी नदी के तट पे निर्मित
एक अति प्राचीन मन्दिर
मन के सब दीपक बुझे
मूर्तियां काई में लिपटीं
और स्थिर घंटियां
ना कोई पूजक ना दर्शक
और ना ही शंखनाद

मैं कवि हूँ
कल्पना ही मेरा जीवन
सोचता हूँ

सो गया है मेरे मन की मूर्तियों में वह समाहित देवता
या फिर पुराना जान कर
परित्याग कर
इन मूर्तियो का
खो गया है
शहर के रंगीन
रंगों से रंगे उन मूर्तियों में
जिनमें पूजक कम
मगर दर्शक बहुत हैं

भाष्कर

मैं कवि हूँ
कल्पना ही मेरा जीवन
सोचता हूँ

मैं जो होता
नीले अम्बर पर चमकता और दमकता "भाष्कर"
मेरी पहली रश्मियों की
तेज से
जागता अधखिला धरती का यह सोया स्वरूप्
और अलसाई हुई मुद्राओं को
त्याग कर डोलतीं
यह डालियाँ जो वृक्ष की
कोयलों की कूक से गूँजते
आम जामुन और यह महुआ के वन
धीरे धीरे फैल जाती गांव में
पुष्प गन्धित वायु से पूरित पवन

लोलिता

छुपी है कोई "लोलिता"
मेरे जीवन के उपन्यास में
सिसकियाँ भरती हुई
अपना सब कुछ खो कर
बहुत कुछ पा लेने की
आस धरे।

खोज रही है मुझमे
अपने बाल्यकाल में लुटी
जवानी की उमंगें

एक प्रश्न

यह किसने उखाड़ फेंके
गुलाबों के
सरसब्ज़ मासूम पौधे
और उगा दिया है
जगह जगह
खूंरेज़ संगीनों के
मज़बूत दरख़्त ??

सुकरात

मैं कवि हूँ
कल्पना ही मेरा जीवन
सोचता हूँ
जाने कैसा था
वह कल का कालचक्र
सोचता हूँ अपने हाथों
कर लिया विषपान जो
सोचता हूँ डर गया होगा
समय की घात से
वह विचारक
मर गया जो
धार्मिक आघात से

मैं कवि हूँ
कल्पना ही मेरा जीवन
सोचता हूँ
मैं पुरुष
आज का सुकरात हूँ
मैं किसी की माँग पर
विषपान कर सकता नहीं
अपने हाथों ही कदापि
मैं तो मर सकता नहीं

अभिलाषा

मैं कवि हूँ
कल्पना ही मेरा जीवन
सोचता हूँ
मेघपट से मैं गिरा
स्वाती की एक बूंद हूँ
सूर्य की स्वर्णिम किरण की
तेज है मुझमें तो क्या
तप रहा हूँ
रेत की छाती पर
और कोसता हूँ स्वयं को
भाग्य और भगवान को

मैं कवि हूँ
कल्पना ही मेरा जीवन
सोचता हूँ
मैं यदि गिरता यहाँ
मुख में कोई सीप के
बन कर मोती मैं चमकता
स्वर्णमुकुट के शीर्ष पर।।

छलिया

नहीं देख पाया
मैं आज तक
तेरा असली रूप

छलता है मुझे
तू भी
बादलों की तरह

नित्य नए आकार में
परिवर्तित कर
स्वयं को

यादों की छिपकलियां

तुम्हारी भयानक यादों कीं
छोटी बड़ी छिपकलियां
रेंगती रहती हैं
दिन रात
मेरे टूटे दिल की
खुरदरी दीवारों पर
कभी उल्टी कभी सीधी
छत से ज़मीन तक
चढ़ती और उतरती हैं
अपने तेज़ और नुकीले नाखूनों के सहारे
कस के पकड़े हुए
मेरी नब्ज़ की चादर
अपलक साधे हुए निशाना
मेरे सुख और चैन पर
छलांग लगा देती हैं
और निगल जाती हैं
पतँगों की तरह
तुम्हारी भयानक यादों की
छोटी बड़ी छिपकलियां

लाज का रक्त

भागती जाती थी वह
थक कर थम जाती थी वह
एक निर्धन नव-यौवना।

समेटती वह अपने तन के
जीर्ण-शीर्ण वस्त्र को
एक असहाय हिरणी सी
भागती जाती थी वह।

वस्त्र जो कि
कामियों की कुदृष्टि से
हो गया था तार-तार
रिस रहे थे गोरे तन से
रक्त उसकी लाज के
और वह सुनसान जंगल
घोर अति-घनघोर तिमिर को
चीरती बरसात में
भागती जाती थी वह
एक निर्धन नव-यौवना।।

अधिपत्य

मेरा कोई अधिकार नहीं
फिर भी चाहता हूँ मैं
तुम पर सम्पूर्ण अधिपत्य।

नहीं चाहता हूँ देखना
तुम्हे किसी और की
भुजाओं में क़ैद।

मन द्वेष से भर उठता है
जब तुम किसी और से
मिलते हो मुस्कुरा कर

खिलखिला कर हँसते हुए
जब किसी और के
कन्धों पर होते हो सवार

नहीं संभाल पाता हूँ
मैं अपने ही कन्धों का बोझ।

आँखों का दर्द

उगते और डूबते
सूर्य की भाँति लाल
मेरी माँ की बूढ़ी आँखें
विवश करती हैं मुझे
बार बार
अपने भीतर झाँकने के लिए

यह जानने के लिए कि-
कौन छुपा है
रक्त रंजित अमौन
जल रहा है जो रात दिन
अखण्ड ज्योति की तरह

उगते और डूबते
सूर्य की भाँति लाल
प्रसन्न-अप्रसन्न मुद्रा में
अट्हास भरता हुआ
चीखता है-
मत देख मुझे

मैं देखने के लिए नहीं
अनुभव के लिए हूँ।।

समय चक्र

मैं इस लिए बूढ़ा हो गया
क्यों कि
मैं धरती के साथ
समय के अनुकूल चला
अनुभव किया
भूत और भविष्य को
रात और दिन को
परिवर्तित होती ऋतु
सर्दी और गर्मी को
पतझड़ और बसन्त को
तारों की गति
उगते और डूबते
सूर्य और चन्द्र को

मिलन और विछोह की
अग्नि में तप कर
भाव विभोर हुआ
मेरा कठोर तरुण मन
किसी की तपती हुई
श्वास का स्पर्श पाकर लगा
सुखद एक पूर्ण जीवन को
जी लिया
मैं इस लिए
बूढ़ा हो गया।।

नहीं होता मैं
कदापि बूढ़ा
यदि मैं चला होता
समय के विपरीत
धरती की अपेक्षा
थाम कर आकाश को
सूर्य के साथ
सदैव
मैं वर्तमान में जीता
उगते और डूबते
न देखता मैं सूर्य को
रात दिन के आंकड़े में
उम्र को न बांधता

आज के ही दिन में जीता
सैकड़ों वर्षों के दिन
नहीं होता मैं
कदापि बूढ़ा ।।

मेरे समआयु

एक धुंधले दर्पण की भांति
मेरी यह बुझी बुझी सी
बूढ़ी आँखें
जिनमें झाँक कर तुम
देखना चाहते हो
अपना अतीत का चेहरा।

वह चेहरा जो कभी
किसी कालीन की तरह
समतल, नर्म और नाज़ुक था
जिसे देखकर ही तो
मैं हो गया था
सदा सदा के लिए तुम्हारा।।

धन्य हो तुम
जो नहीं देख सकते
एक धुंधले दर्पण की भांति
प्रकाशहीन
मेरी इन बूढ़ी आँखों में
चाह कर भी अब
अपना वर्तमानिक चेहरा
क्यों कि तुम भी
अब हो गए हो जर्जर
मेरी ही तरह बूढ़े
और अंधे।

चन्द्र-माँ

मैं क्षितिज की गोद में
जब देखता हूँ आज भी
अधजली रोटी की माफ़िक़
अर्ध पीला चन्द्रमा
बेधती हैं आत्मा को
चन्द्रमा के मध्य उभरीं
काली भूरी अधकटी
चित्र सी रेखाओं में
क़ैद मेरे अतीत कीं
अनगिनत स्मृतियाँ।।

माँ के आँचल का वह साया
वह खुला आकाश तारे
चांदनी का फर्श
आँगन में बिछी चारपाइयां
पास में सोई हुई
दादी के खर्राटों की गूँज
मन्द पुरुवा में घुले
दादा के तम्बाकू के गन्ध
दूर बरगद पर कहीं
जागे हुए पंछी के स्वर
कुलबुलाते माँ की गोदी में
मेरे भाई बहन।।

याद है जब माँ ने
दिखलाया था मुझको चाँद में
कांपती ऊँगली से अपनी
बूढ़ी माँ के अनबुझे
मौन से चेहरे का अक्स।।

याद है जब चन्द्रमा को
माँ ने बतलाया था मुझसे
अपना इकलौता सगा भाई
मेरे मामा का रूप।।

मैं क्षितिज की गोद में
जब देखता हूँ आज भी
दूर मीलों दूर
गगन के मध्य पीले चाँद में
काली भूरी अधकटी
जब चित्र सी रेखाओं को।।

सोचता हूँ नित्य नए
आकार में ढलती हुई
इस अ-आकार काले
टेढ़े मेढ़े पत्थरों के
अनगढ़े बेडौल और
निर्जीव सी चट्टान से
क्यों माँ को इतना प्रेम था??

मिथ्या

एक अपाहिज पंख विहीन
भूरा मच्छर
मेरी अ-कविता की पुस्तक
रक्त-रंग की अंतिम रचना
रक्त-रस शीर्षक पर बैठा
स्याही का रस चूस रहा था।

चूस रहा था
काले मोटे शब्दों के
स्याही रूपी रक्त में बहते
मेरे बचपन के कोमल
पुष्प सरीखे मन के रस को।

मैं बेबस असहाय कवि
अपलक बैठा देख रहा था
अपनी उस पुस्तक को जिसमे-
छपी थी मेरी अ-कविता में
मेरे जीवन की वह पहली
मिथ्या ही पर
सच्ची घटना ।।

युग परिवर्तन

हर्षित है मन मेरा देखकर
नई सहस्त्राब्दी के
आगमन की शोभा को
युग परिवर्तन को
चन्द्रमा और सूर्य को
बंधक बनाने की
मानव अभिलाषा की
कोरी कल्पनाओं से।।

हर्षित है मन मेरा देखकर
ग्रह उप ग्रहों से
विजय रथ पर बैठा
कितना यह आतुर है
तोड़ने को सीमाएं
धरती और अम्बर की
मानव यह उपद्रवी
कितना यह व्याकुल है
विखण्डित करने को
क़ुदरत की रचनाएँ।।

1जनवरी सन् 2000ई. को इक्कीसवीं सदी के आगमन पर कही गयी विशेष कविता जो उस वर्ष कई पत्र पत्रिकाओं में प्रकाशित हुई थी।

मेरा अतीत

हूँ एक सूखी डाल मैं
जब सोचूं बीती बात
भर जाते हैं नयन
अश्रु की होती है बरसात।

कागा मुझ पर बना घौसला
तितरियां के संग
नितदिन करता बात बात पर
हुल्लड़ और हुड़दंग।

हुदहुद मोर गादुड़ मुझ पर
आतें शोर मचाते
उछल कूद करते थे बन्दर
उल्लूक मुँह बिचकाते।

लद जाती जब फूलों से
मौराइ टहनी सारी
खिल जाती थीं बांछें दिल की
दिखती सूरत न्यारी।

सर सर बहते पवन झकोरे
चूम चूम कर गात
कूकने लगतीं कोयल
नभ में लहराते थे पात।

हूँ एक सूखी डाल मैं
जब सोचूं बीती बात
भर जाते हैं नयन
अश्रु की होती है बरसात।।

नास्तिक

मेरे भीतर भी
पनपने लगा है बीज
निराशिता का
और रहने लगा है मन
निरन्तर मेरा निराश

डरता हूँ कि
मैं नास्तिक ना हो जाऊँ
क्यों कि
निराशिता ही जनक है
नास्तिकता की ।।

विश्वास

मैं निराश हो चुका हूँ
अपनी कविताओं में छुपे
भावों के भविष्य से
जिनकी कल्पना
वर्षों पहले की थी मैंने
तुझे अपनाने की कल्पना
तुझे बस पाने की कल्पना

मेरी वह सारी कल्पनायें
बाढ़ में बहते तिनके की तरह
बह गयीं
मेरे हृदय के सागर की
उफनाती लहरों में
और
टूट गया मैं
तथा मेरा विश्वास
रूपी-अरुपी
अनगिनत खुदाओं से

तुम

अकड़ गयीं
मेरी रीढ़ की
सारी हड्डियां
और तन गयीं हैं
सारी नसें
मेरी गर्दन कीं
नहीं झुकता
अब यह सर
कहीं किसी के आगे
मन्दिर, मस्जिद
चर्च, गरुद्वारा
सब लगते हैं
व्यर्थ मुझे
जाने क्यों
जब से तुम
हो गए हो पराये।।

प्रेम

नन्ही सी मासूम कली वह
गुड़िया जैसी भोली भाली
बात बात पर लड़ती मुझसे
हंसती रोती शोर मचाती
कभी झनककर दूर हो जाती
कभी चहक कर पास वो आती
छिना झपटी करती मुझसे
बात बात पर लड़ती मुझसे
फूलों से तितली को पकड़ के
कभी कभी ललचाती थी
कलियों पर बैठे भँवरे को
देख कभी डर जाती थी
अर्पिता था नाम वह लड़की
साथ जो मेरे पढ़ती थी
छूटटी के दिन ना मिलने पर
अक्सर मुझसे लड़ती थी
अब भी उसकी याद के साये मेरे साथ में रहते हैं
उम्र चढ़ी तब जाना मैंने
प्रेम इसी को कहते हैं।

कवि

रात्रि जागरण केवल
उल्लूक ही नहीं करता
कवि भी करता है
वैचारिक मन्थन के लिए
समाजिक चिन्तन के लिए।

देखता है वह सारी रात अपने दूरदर्शी नेत्रों से
रात की काली चादर में सिमटा
दिन का उजला नंगा तन
मानवता का वहशीपन।

दूर दूर तक फैला काला अन्धकार सघन घोर
सहमी सहमी बैठी छुप के
दीवारों की ओट में भोर।

देखकर यह दृश्य
कवि कराह उठता है
और भर जाते हैं
उसके क़लम में
स्याही की जगह आंसू ।

वह मूर्तियां

मन चाहता है देखूं
वह सैकडों वर्ष पुरानी
देशी-स्वदेशी
सलिल-अश्लील
समस्त हस्त कलाएँ
परन्तु रोक देती हैं मुझे
मादक-उन्मादक
नग्न और संभोगरत
कामलिप्त मूर्तियां।।

मैं नहीं गया कभी
घूमने-घुमाने
मन मोहक विश्वविख्यात
खजुराहो के
उन भव्य मन्दिरों में
क्यों कि-
मेरे साथ मेरा
समस्त परिवार है
माँ है बहन है बेटी है
समाज है ।।

मैं जाता अवश्य ही
मन मोहक विश्वविख्यात
खजुराहो के उन मंदिरों में-
काश जो न होती वहां
भक्तों के ध्यान की
घोतक वह मूर्तियां
मन्दिर का दर्शन
अवरोधक वह मूर्तियां

वह मूर्तियां जो आज भी
प्रतीक बन खड़ी हैं
जाने कैसे जीवन का
जाने किस समाज का
वह मूर्तियाँ कि
जिनसे टपकता है रात दिन
रक्त जाने कितनी ही
अबलाओं की लाज का।।

दीप

मैं हूँ एक दीप
किसी आरती की थाल का
प्रज्वलित हूँ कामना
और वेदना की अग्नि से।

कामना कि -
आये कोई वीर मेरे सामने
उसकी छाती में उतर कर
दामिनी बन जाऊँ मैं
देश की रक्षा की ख़ातिर
युद्ध के मैदान में
बनके अग्नि बाण बरसूँ
क़हर बनके छाऊँ मैं।।

वेदना कि-
मैं न होता
काश एक दीपक अगर
तेज में मेरे न होती
गर्म लावों सी दहक
फिर तो वायु के थपेड़े
मुझपे न पड़ते कभी
फिर यह शत्रुता न होती
मेरे तिमिर के मध्य में
फिर न कोई चूम कर
तन मेरा होता अधमरा
फिर कलंकित मैं न होता कीट तेरे रक्त से
फिर न रख कर थाल में
मुझको घुमाता आदमी
नाम पर भगवान के
मुझसे कमाता आदमी।।

कलियुग

अवतार शब्द मात्र भ्रम के हैं
नहीं होता कोई
किसी का पर-रूप
पर-आत्मा
सबकी अपनी आत्मा है
सबका अपना रूप।

यदि सत्य है
अवतरण की धारणा
तो मैं ही हूँ
समस्त देवताओं का रूप
विष्णु शिव राम कृष्ण का पर-रूप।।

मैं ही विष्णु हूँ
पर त्याग दिया है मैंने
शेषनाग का आसन
क्यों कि-
कलयुग में बारूद भरा
मिटटी का कण कण
शेषनाग के विष से भी घातक है।।

मैं ही शिव हूँ
पर त्याग दिया है मैंने
विष ग्रहण भँगपान का सेवन
क्यों कि-
कलयुग का हर मानव दिखता
विष भोगी और
भंग भोजक है।।

मैं ही राम हूँ
पर त्याग दिया है मैंने
इस जीवन में वन विचरण
क्यों कि-
कलयुग में वन के वासी
ऋषियों के पीताम्बर ओढ़े
बैठे लाखों दस्यु हैं।।

मैं ही कृष्ण हूँ
पर त्याग दिया है मैंने
गीता के उपदेश को देना
क्यों कि-
कलयुग में अब चप्पा चप्पा
भारत का कुरुक्षेत्र है
पांडव लड़ते हैं पांडवों से
होता नित्य महाभारत है।।

प्रदूषण

संगे मरमर का गढ़ा
प्रेम का प्रतीक मैं
चन्द्रमाँ का बनके दर्पण
एक महल के रूप में
मुद्दतों से मैं खड़ा हूँ
एक नदी के छोर पर
सिसकियाँ भरता हुआ
काटता हूँ रात-दिन।।

खण्डहर बनता हुआ
ये पूछता है मेरा मन
कब तलक छुपकर रहेगा
ये तुम्हारा बुढ़ापन
कब तलक भरते रहोगे
रात दिन ये सिसकियाँ
कब तलक आख़िर छुपेंगी
ये तुम्हारी झुर्रियाँ।।

कब तलक ज़िदा रहोगे
ऐसे प्रदूषण में तुम
देखना हो जाओगे फिर
एक दिन नक़्शे से गुम
जल्द ही ऐ ताज तेरा
वह भी दिन आने को है
टुकड़े टुकड़े होके तू
बेवक़्त ढह जाने को है।।

संविधान दाता

गणतन्त्र दिवस की सुबह
आज मैंने देखा है
गलियों से गुज़रती हुई
बच्चों की लम्बी-
लम्बी कतारें

हाथों में तिरंगा
और चित्रपट लिए
अलग अलग समूहों में राष्ट्रगान गाते हुए

मन मेरा
प्रफुल्लित हुआ देख कर
भविष्य के हाथों में
अतीत की यह तस्वीरें

मैं अति उत्साहित
देखता बस देखता रहा
गलीयों से गुज़रती हुईं
एक-एक झाँकियाँ

गांधी और सुभाष
नेहरू और पटेल
भगत सिंह आज़ाद
खुदी राम बोस
सभी थे जिसमे
अपने-अपने वेश में

किन्तु कोई झांकी में
क्यों नज़र नहीं आई
आज फिर मुझे "आसी"
संविधान दाता की
छोटी या बड़ी छाया?

मरीचिकाएं

जीवन के पथ पर
भागता रहता हूँ
मैं सदैव
अपनों से
परायों से
जिस्मों से
सायों से
धर्मों समुदायों से

भागम-भाग के जीवन में
कहाँ ठहराव है
मैं नहीं जानता
जानता तो रुक जाता
ठहरी हुई
हवा की तरह
सूखी हुई
नदी की तरह
भीगी हुई
घटा की तरह

मैं बस जानता हूँ
भागना मेरा भाग्य है
इसलिए नहीं रुकता
भागता ही जाता हूँ
थक कर भी नहीं थकता

मैं रुकता
पर क्या करूँ
जीवन के पथ पर
रुक कर ये देखा है
खाली रिक्तिकाएं हैं
मंज़िल की सूरत में
केवल मरिचिकाएं हैं।।

समय

समय की उत्पत्ति
ईश्वर के अस्तित्व से हुई है
या ईश्वर की उत्पत्ति
समय के अस्तित्व से
सत्य चाहे जो भी हो
पर है सर्वोपरि
समय ही
क्यों कि

समय तब भी था
जब न था ईश्वर
न ईश्वरीय संरचनाएँ
समय तब भी होगा
जब न होगा ईश्वर
न ईश्वरीय संरचनाएँ।।

खुशबू

शर्म से लाल पड़ गया था
डूबते हुए सूरज की तरह
उसका चाँद सा
हसीन सफ़ेद चेहरा
जब मैंने
चूम लिया था
उसकी नर्मो-नाज़ुक
गुदाज़ हथेली
जिनमें बसी हुई थी
दोपहर के भोजन में
परोसे गए
कबाब की खुशबू ।।

दहशत

कई ऐसे भिखारी हैं
हमारे शहर में
जो किसी देवता
या भगवान् के नाम का सहारा नहीं लेते
और मांगते हैं भीख
दो चार नहीं हज़ार रुपये
वो कमाते हैं रोज़
भीख के नाम पर
लोग देते हैं उन्हें सहर्ष
दया में आकर नहीं
बल्कि दहशत में आकर